ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-5* August-2020
Anthology : The Research

# भारत में सतत् विकास का स्वरूपः सैद्धान्तिक सवाल

# Nature of Sustainable Development In India: Theoretical Question

Paper Submission: 18/08/2020, Date of Acceptance: 29/08/2020, Date of Publication: 30/08/2020

**राकेश कुमार**
शोध छात्र,
अर्थशास्त्र विभाग,
बी.आर.ए. बिहार
विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर,
बिहार, भारत

**सारांश**

किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए सुदृढ़ नीतियाँ एवं योजना आवश्यक होती है किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक होता है उनका समुचित क्रियान्वयन और इसका दायित्व प्रशासनिक व्यवस्था पर होता है। वर्तमान समय में विकासशील राष्ट्रों को इस महत्वपूर्ण कष्ट की प्रतीति हो रही है कि सुनियोजित योजनाएँ यद्यपि आवश्यक हैं परन्तु वे अपने आप में पर्याप्त नहीं है। कागज पर योजनाएँ कितनी ही अच्छी क्यों न हो परन्तु जब तक उन्हें यथोचित रूप से कार्यान्वित नहीं किया जाता तब तक वे अर्थहीन हैं। योजना का अच्छा प्रारूप उसका सफलता की गारंटी नहीं है। अतएव उसकी सफलता का कार्यान्वयन ही उसका निर्णायक पक्ष माना जाता है।

Strong policies and plans are necessary for the development of any nation, but more than that, their proper implementation and its responsibility lies on the administrative system. At the present time, developing nations are realizing this significant pain that although planned plans are necessary, they are not sufficient in themselves. No matter how good the plans are on paper, they are meaningless until they are implemented properly. A good plan of the plan does not guarantee its success. Therefore, the implementation of its success is considered to be its deciding factor.

**मुख्य शब्द :** सतत् विकास, समावेशी विकास, तृतीय विश्व के देश, संरचनात्मक परिवर्तन, विशिष्टीकरण, आधुनिकीकरण।

Sustainable Development, Inclusive Development, Third World Countries, Structural Change, Specialization, Modernization.

**प्रस्तावना**

यदि हम नव–स्वतंत्र राष्ट्रों के अभिलेख पर एक नजर दौड़ाए तो हम पाते हैं कि स्वदेशी एवं विदेशी कुशल विषेशज्ञों द्वारा बनाई गई सुंदर योजनाओं से भरे पड़े हैं लेकिन वे सब कार्यान्वयन में डगमगाती प्रतीत होती है। विकासशील देशों में परिवर्तन के माध्यम के रूप में प्रशासन तंत्र की भूमिका विगत कुछ दशकों में तीव्रता से उभरती जा रही है। इन देशों की सबसे आधारभूत समस्या यह है कि पश्चिमी देशों के पिछली तीन शताब्दियों के विकास के आयाम को कुछ ही दशकों में किस प्रकार समेट लिया जाए। यह एक सुस्थापित तथ्य है कि आर्थिक विकास के साथ–साथ समाज में संरचनात्मक परिवर्तन होने लगते हैं और उसकी समूची मूल्य संहिता को नया रूप मिलने लगता है। प्रशासनिक वैज्ञानिक व्यवस्था विभिन्न प्रकार के आर्थिक–सामाजिक बलों के लिए अदृश्य संधार का कार्य करने लगती है।

इसके साथ ही संधार के अनेक बिंदुओं पर तनाव के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। वस्तुतः स्वयं वह संधार भी बहुत समय तक निरपेक्ष तत्व नहीं बना रहता। कुछ क्षेत्रों में वह अवरोधक तत्व के रूप में सामने आता है और कहीं–कहीं वह विकास की सामान्य प्रक्रियाओं का भी विरोधी साबित होता है। इसके विपरीत कुछ मामलों में वह उत्प्रेरक तत्व, उद्यमी, नेतृत्व इत्यादि की भूमिका का भी निर्वहन करता है।[1]

वस्तुतः प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के बीच होने वाली क्रिया–प्रक्रिया की गुणवत्ता ही किसी राष्ट्र की विकास की दिशा और उसकी गति को निर्धारित करती है। इन अनेक रूपों एवं शक्तियों की क्रिया–प्रक्रिया ग्रामीण क्षेत्रों में और भी अधिक स्पस्ट रूप में सामने आती है क्योंकि इन ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य से कहीं अधिक विस्तृत और वृहद् काल

आयाम, जो सैकड़ों से हजारों वर्षों तक हो सकता है, को कुछ ही दशकों में समेटने का प्रयास किया जाता है। चँकि इन ग्रामीण समाजों की सबसे बड़ी न्यूनता यह होती है कि यहाँ पर नवीन राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था के संबंध में बहुत कम जानकारी होती है वहीं नवीन प्रशासनिक व्यवस्था के लिए इन ग्रामीण समाजों की कार्य करने की व्यवस्था एक प्रकार से अजनबी होती है और प्रशासन के घटकों एवं स्थानीय समाज के मध्य सोचने विचारने एवं कार्य करने की दृष्टि से बहुत अधिक भिन्नता होती है और इनमें मिलन बिंदु ढूंढ़ना बहुत कठिनाई भरा होता है। यही कारण है कि सुदूर क्षेत्रों में विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया अपनाई जाती है ताकि विकास समाज की आकांक्षाओं एव अपेक्षाओं के अनुरूप किया जा सके।[2]

**अध्ययन का उद्देश्य**

इस आलेख का उद्देश्य है कि सतत् विकास के स्वरूपों को स्पष्ट करना एवं भारत में सतत् विकास के लिए चलाये गये कार्यनीतियों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।

**सतत् विकास**

भारत के सतत् विकास को भली–भाँति समझने के लिए जरुरी है कि हम सबसे पहले 'विकास' क्या है? इसको समझ लें। क्योंकि इसके उपरांत ही हम सतत् विकास के मार्ग में आने वाले समस्याओं को रेखांकित कर सकते हैं। प्रकृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नियम परिवर्तन का है, स्वयं प्रकृति भी निरंतर परिवर्तनशील है। प्रारंभ से ही प्रकृति का स्वरूप निरंतर परिवर्तनीय रहा है। एंजिल्स ने यह सही कहा है,''समस्त प्रकृति, छोटे से लेकर बड़े तक, बालू–कण से लेकर सूर्य तक और वायु कण से लेकर व्यक्ति तक आने और चले जाने कि एक निरंतर स्थिति में, निरंतर प्रवाह में, अनवरत गति तथा परिवर्तन की स्थिति में है।[3] यही कारण है कि समाज में निरंतर परिवर्तन और अपरिवर्तनशील समाज का अस्तित्व संभव ही नहीं है। विकास कार्यों से हीं समाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण क्रम प्रारंभ होता है।

'विकास' के अर्थ की वास्तविकताओं को समझने में स्वयं समाजशास्त्रियों एवं राजनीतिशास्त्रियों को अत्यंत कठिनाई का सामना करना पड़ा है। विकास एक ऐसी बहुआयामी अवधारणा है जिसकी निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा करना कठिन है। विकास शब्द के अर्थ पर विद्वानों में मतैक्य का आभाव है। किन्तु फिर भी विद्वानों ने विकास को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। जोसेफ ला प्लोम्बारा ने विकास को राजनीतिक तंत्र की शक्ति के संचालन या प्रबंध को समयानुसार मांग के अनुकूल परिवर्तन के स्वरूप में समझा है। यह आर्थिक एवं सामाजिक कारकों को एक विशिष्ट आशय से महत्व देता है। उसने राजनीतिक विषय के संदर्भ को प्रचुर मात्रा में साफ–साफ प्राथमिकता देते हुए यह माना है कि आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक कारणों से राजनीतिक परिवर्तन हो सकते हैं, किन्तु उसने यह नहीं माना है कि ये कारक एक–दूसरे के ऊपर निर्भर है। इसी संदर्भ में विकास कि प्रक्रिया के अन्तर्गत सामाजिक विकास कि स्थिति को स्पष्ट करने का राइनहार्ड बैन्डिक्स ने सफल प्रयास किया है। उसने आधुनिक युग में ऐतिहासिक परिवर्तन की दिशा में विकास शब्द के प्रयोग करने की आवश्यकता तब समझी है जबकि तकनीकी एवं आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक दोनों परिवर्तनों की बात एक साथ हो रही हो।[4]

सैद्धान्तिक दृष्टि से विकास नामक प्रक्रिया में परिवर्तन तथा उन्नयन दोनों पक्षों को ही सम्मिलित किया जाता है परन्तु यहाँ पर परिवर्तन को अर्थपूर्ण एवं विकास को सोद्देश्य होना चाहिए। यह स्मरणीय है कि समाज विज्ञानों की अधुनातन और जटिल शोध प्रणालियाँ भी, इन अवधारणाओं की कोई 'मूल्य निरपेक्ष' परिभाषाएँ अभी तक नहीं दे पायी हैं। उत्तर युद्ध कालीन एवं उत्तर उपनिवेशवादी देशों के बारे में अमरीकी विद्वानों ने गम्भीरता से शोध की है तथा उन्होंने विकास के अनेक प्रतिमानों का निर्माण किया है एवं विकास के अनेक कारकों को रेखांकित तथा चिन्हित किया है। उदाहरणार्थ वे इन कारकों में प्रजातंत्रीकरण, आधुनिकीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण, समृद्धि, संस्था निर्माण, विशिष्टिकरण, सामाजिक ऐक्य, आर्थिक व्यवस्था में विद्यमान समान वितरण की प्रणाली तथा शान्तिपूर्ण तरीकों से विकेन्द्रित समाज की स्थापना की चर्चा करते हैं। व्यापक संदर्भ में देखा जाय, तो 'विकास' जहाँ लक्ष्य है मंजिल है तथा एक 'एण्ड प्रोसेस' है, वहाँ इसे एक वांछित लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में प्रयुक्त किए जाने वाले साधनों या यंत्रों या रास्तों से अलग रखकर भी देख नहीं सकते।

**नीतिगत पहलकदमियों का क्रम**

भारत में सतत् विकास के इस ताने–बाने को समझने के लिए हमें स्वतंत्र भारत के इतिहास के पन्नों को खरोचना होगा। शुरूआती दौर में डॉ0 स्पेन्सर हैच द्वारा केवल केरल में वाई0एस0सी0ए0 के तत्वावधान में भारतनडैम प्रयोग, ई.एल.ड्रेन द्वारा किया गया गुजरात आन्दोलन एवं अन्य प्रयोग एवं 1932 की बी.टी. कृष्णामचारी का बड़ौदा ग्रामीण उत्थान प्रयोग, आदि शामिल है। इन सभी प्रयोगों ने स्वतंत्र भारत के लिए सतत् विकास की एक ऐसी नींव डाली जिस पर सतत् विकास की सपनों का महल खड़ा किया जा सकता है। उस नींव की अगली ईट के रूप में मद्रास की फिरकी योजना, एस0के0डे0 द्वारा किया गया निलोखेडी प्रयास आदि को माना जा सकता है। सामाजिक, आर्थिक न्याय के लिये जो हमारे संविधान ही धारा 36–5 तक के प्रावधान है, उन्हें भी जोड़ा जा सकता है।

पहली पंचवर्षीय योजना में सतत् विकास हेतु ''सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा'' को स्वीकार किया गया जो सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन लाने में मदद कर सके। इसके लिये विस्तार अवधारणा के आधार पर प्रखण्डों का निर्माण किया गया जो प्रखण्ड विकास पदाधिकारी की अगुवाई में प्रशासकीय नेतृत्व प्रदान कर सके। सर्वप्रथम 5.2 सामुदायिक विकास योजनाओं को देश के विभिन्न भागों में प्रयोग के रूप में गाँधी जयंती के अवसर पर 2 अक्टूबर 1952 को लागू किया गया।[5] प्रथम वर्ष सामुदायिक परियोजना के प्रति लोगों का उत्साह अत्यधिक देखने को मिला। 1953 में पूरे देश भर में राष्ट्रीय विस्तार सेवा प्रखण्डों की स्थापना हुई

और प्रत्येक प्रखण्ड को तीन वर्ष के अन्दर 7.5 लाख रूपये का अनुदान दिया गया। परन्तु सामुदायिक विकास प्रखण्ड की अनुदान की राशि 22 लाख से घटा कर 15 लाख कर दी गई है। इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत तक देश में 1114 प्रखण्डों का गठन किया गया जिसके अन्दर 163000 गांवों की एक करोड़ 10 लाख आबादी को शामिल कर लिया गया और सामुदायिक विकास के लिये समय सीमा निर्धारित की गई, ऐसा लगने लगा कि सचमुच गांवों का पुनः उद्धार हो जायेगा। लेकिन शीघ्र ही उस उत्साह की चिंगारी की ज्वाला धूमिल होती दिखाई पड़ने लगी।[6]

दूसरी पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास मंत्रालय का गठन किया गया और देखा गया कि सामुदायिक विकास की गति धीमी पड़ गयी है और लाभ गरीब जनता को न मिलकर प्रबुद्ध वर्ग को ही मिला है। इस बात को ध्यान में रखते हुए बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर जन–सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिये त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू करने की बात की गई जिसे 2 अक्टूबर 1959 को अमलीजामा पहनाया गया। जहाँ तक सतत् विकास का संबंध है, इसका एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं संवेदक अंग है कृषि। इसकी अहमियत को ध्यान में रखते हुए तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन को सामुदायिक विकास से अधिक प्राथमिकता दी गई।

परन्तु इन प्रयासों के बावजूद तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक सतत् विकास के जो परिणाम सामने आये उनसे पता लगा कि ग्रामीण जनसंख्या का 80 प्रतिशत इनके लाभों से वंचित रह गया। हरित क्रांति प्रारम्भ हो चुका था। सरकारी चौथी पंचवर्षीय योजना में ''स्मॉल फॉरमर्स डेवलपमेंट'' एजेंसी ''एस0एफ0डी0ए0'' छोटे किसानों को कर्ज एवं कृषि संबंधी सामग्री मुहैया कराने के लिए गठित की गयी। दूसरा कार्यक्रम था ''मार्जिनल फॉरमर्स एण्ड एग्रीकल्चरल लेबरर्स डेवलपमेंट एजेन्सी'' एस0ए0एल0डी0ए0 इस कार्यक्रम का उद्देश्य छोटे किसानों एवं कृषि मजदूरों की आर्थिक दशा सुधारना था। परन्तु ये कार्यक्रम भी बहुत अंशों में असफल ही रहें, क्योंकि इन कार्यक्रमों में क्षेत्रीय अवधारणा का अभाव था।

पुनः चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ''ड्राउट प्रॉन एरिया प्रोग्राम'' डी0एपी0ए0पी0, हिल एरिया डेलवपमेंट प्रोग्राम (एच0ए0डी0पी0) ट्राईबल एरिया डेलवपमेंट प्रोग्राम टी0ए0डी0पी0 लागू किया गया।[7]

सतत् विकास के क्षेत्र में दूसरा मील का पत्थर पांचवी पंचवर्षीय योजना को माना जा सकता है। इस काल में सतत् विकास की समीक्षा के बाद अशोक मेहता समिति का गठन किया गया। अशोक मेहता समिति ने सतत् विकास के क्षेत्र में असफलता और पंचायती राज संस्थाओं की निष्क्रियता के संदर्भ में जो कारण बताये उनमें प्रमुख थे पंचायती राज संस्थाओं में निहित स्वार्थो का उदय, केन्द्रीय और राज्य सरकारों में राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव एवं उचित संसाधनों का अभाव रहा है। इन सारी बातों के बावजूद समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि पंचायती राज संस्थाओं की संरचना अधिकार, कर्तव्य, आर्थिक और प्रशासनिक संसाधनों का उपयोग उन सबका निर्धारण सतत् विकास प्रबंधन के क्षेत्र में पैदा होने वाली क्रियात्मक आवश्यकताओं के आधार पर होना चाहिए। समिति का यह भी कहना था कि तत्कालिक सतत् विकास प्रबंधन बहुत चुनौतीपूर्ण हो गया था और उसकी आंकांक्षाओं को सामुदायिक विकास योजना के संरचना द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। इसके लिए संरचनात्मक एवं संगठनात्मक दोनों तरह के परिवर्तन आवश्यक समझा गया। समिति समन्वित सतत् विकास पर विशेष बल दिया।

इस संदर्भ में 1979 में एक और नया प्रयास किया गया, जबकि समन्वित सतत् विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत उद्योग, नौकरी, व्यापार आदि को जोड़ा गया और खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग को भी सबल बनाने का प्रयास किया गया। समन्वित सतत् विकास कार्यक्रम में ढांचागत परिवर्तन भी किया गया, जिसके अन्तर्गत एस0एफ0डी0ए0 को समाप्त कर जिला स्तर पर अप्रैल 1981 में जिला, सतत् विकास संस्था डी0आर0डी0ए0 की स्थापना की गई। छठी पंचवर्षीय योजना 1980–85 में समन्वित सतत् विकास कार्यक्रमों में ग्रामीण बेरोजगार युवकों के लिये डबाकरा, ट्राइसेम आदि कार्यक्रम लागू किये गये। परन्तु इन सबकों का परिणाम कोई उत्साहवर्द्धक नहीं रहा। इन सारी कमियों के बावजूद छठी पंचवर्षीय योजना में सतत् विकास को देखा जाए तो ऐसा लगता है कि गरीबी 45–46 प्रतिशत के इर्द–गिर्द ही रही है। यहां तक ही हरित क्रांति के समय में भी गरीबी में कोई खास अन्तर नहीं दिखाई दिया। इन सारी बातों से यह साफ जाहिर होता है कि कोई जरूरी नहीं कि सामाजिक न्याय एवं आय में वृद्धि आर्थिक विकास का स्वाभाविक परिणाम ही हो। यदि वास्तविकता में गरीबी को हटाना है तो इसके लिये समन्वित सतत् विकास एवं रोजगार के विशिष्ट कार्यक्रमों पर विशेष बल देना होगा।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए सातवीं पंचवर्षीय योजना के बीच में ही तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने रोजगार कार्यक्रम को बढ़ावा देने हेतु एन0आर0ई0पी0 राजीव गांधी ने रोजगार कार्यक्रमों को बढ़ावा देने हेतु एन0आर0ई0पी0 एवं आर0एल0ई0पी0 को मिलाकर एक नई योजना चलाई जिसे जवाहर रोजगार योजना जे0आर0वाई0 कहा जाता है। यह उस समय की बात है जब राजीव गांधी ने पंचायती राज संस्थाओं को प्रभावी बनाने के लिये उन्हें संवैधानिक दर्जा देने का संकल्प दोहराया और एल0एम0 सिंधवी समिति एवं बी0एन0 गाडगिल समिति आदि का गठन किया। जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सहायता राशि डी0आर0डी0ए0 के माध्यम से न भेजकर सीधे ग्राम पंचायतों को भेजने का आदेश दिया।[8]

इन सारे निर्देशों के साथ ही सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 20000 करोड़ रूपये सतत् विकास पर खर्च करने के बावजूद गरीबी रेखा से नीचे रहनेवालों का प्रतिशत 39 से कम नहीं हो पाया। इसी योजना के दौरान सतत् विकास के कुछ और नए कार्यक्रम जैसेः– सुनिश्चित रोजगार योजना, वृद्धावस्था पेंशन योजना, राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल योजना, समन्वित बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण आवास योजना, जल संभरण

प्रबंधन आदि कई नई योजनाएं प्रारम्भ की गई, जिनमें कुछ तो शत–प्रतिशत केन्द्रीय सहायता पर कुछ 80:20 के अनुपात में एवं कुछ 50:50 के अनुपात में राज्य एवं केन्द्रीय सरकार की सहायता से चलाई गई। फिर भी गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में मात्र दो प्रतिशत की ही गिरावट आई।[9]

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान सर्वोच्च प्राथमिकता 'मानव संसाधन का विकास अर्थात् रोजगार, शिक्षा व जनस्वास्थ्य को दिया गया अर्थात् मानव विकास को सारे विकास प्रयासों का सार तत्व माना गया है इसके अतिरिक्त ढाँचे का सशक्तीकरण तथा शताब्दी के अंत तक लगभग पूर्ण रोजगार की प्राप्ति को प्रमुख लक्ष्य बनाया गया। औद्योगीकरण के ढाँचे में परिवर्तन के अन्तर्गत भारी उद्योग का महत्व कम करते हुए आधारित संरचनाओं पर बल देने की शुरुआत इस योजना से की गई।

इसी प्रकार नौवीं पंचवर्षीय योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता न्यायपूर्ण वितरण एवं समानता के साथ विकास को दिया गया। इस योजना की अवधि में सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 6.5 प्रतिशत रखा गया जबकि उपलब्धि मात्र 5.4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की रही इस प्रकार यह योजना असफल रही इस योजना की असफलता के पीछे अन्तर्राष्ट्रीय मंदी को जिम्मेदार माना गया क्षेत्रीय संतुलन जैसे मुद्दे को भी इस योजना में विशेष स्थान दिया गया।

इसलिए दसवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य देश में गरीबी और बेरोजगारी समाप्त करना तथा अगले 10 वर्षों में प्रति व्यक्ति आप दुगुनी करना प्रस्तावित किया गया। हाल ही में निष्पादन के कुछ पहलुओं से उत्पन्न उच्च प्रत्याशाओं की पृष्ठभूमि में तैयार की गयी सुधार–उत्पादन काल के दौरान सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर आठवीं और नौवीं योजना के दौरान औसतन 6.1 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जबकि यह अस्सी के दशक में 5.7 प्रतिशत थी। इस प्रकार भारत विकासशील देशों में सबसे अधिक तेज गति से विकसित होने वाले दस देशों में शामिल हो गया। अन्य आयामों में भी उत्साहवर्द्धक प्रगति हुई।[10]

अपनी दृष्टि की रूपरेखा का उल्लेख करते हुए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य तीव्रतम एवं समावेशी विकास था। इसमें जीडीपी को समग्र देश के लिए 9 प्रतिशत के उच्च स्तर तक ले जाने की परिकल्पना है। इसका अर्थ यह है कि प्रति व्यक्ति जीडीपी में 7.6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि होगी और यह 10 वर्षों में दुगुना हो जायेगा।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना को राष्ट्रीय विकास परिषद् की दिसम्बर 2012 ई. में मंजूरी मिली इसका मुख्य उद्देश्य तीव्र अधिक समावेशी और धारणीय विकास है। इस योजना में विकास के लिए दो वैकल्पिक लक्ष्यों को रखा है। पहला ग्यारहवीं योजना के 9 प्रतिशत विकास के लक्ष्य को फिर से दोहराना है जिसे अभी प्राप्त किया जाता है। दूसरा बारहवीं पंचवर्षीय योजना के लिए 9.5 प्रतिशत का और भी उच्च औसत विकास लक्ष्य है आन्तरिक संगतता और अन्तर क्षेत्रीय संतुलनों की दृष्टि से इन लक्ष्यों की व्यवहारिकता की जाँच करने के लिए अनेक वृहद आर्थिक मंडलों का उपयोग किया गया है। इन दो वैकल्पिक विकास लक्ष्यों के निहितार्थ का अस्थाई आकलन प्रस्तुत किया गया है।[11]

**निष्कर्ष**

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि किसी भी देश के विकास की बात जब हम करते हैं तो इसके अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन, विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं प्रोद्यौगिकी के विकास की बात आती है। किसी भी देश का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उपरोक्त क्षेत्रों में विकास न हो। बहुत दिनों तक यह धारणा व्याप्त थी कि आर्थिक विकास मुख्यतः औद्योगिक विकास से ही संभव है तथा कृषि का योगदान प्रायः इस क्षेत्र में नगण्य होता है। 1970 के दशक में कई देशों में हरित क्रांति के फलस्वरूप कृषि की उत्पादकता में आश्चर्यजनक वृद्धि ने यह सिद्ध कर दिया कि कृषि की उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि का आर्थिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इसके बाद प्रायः सभी विकासशील देशों में कृषि के क्षेत्र में नये कार्यक्रम तैयार किये जाने लगे। आज कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। आज भारत की 65 प्रतिशत ग्रामीण आबादी कृषि पर निर्भर है। कृषि कार्य से जहाँ लोगों को खाद्यान्न उपलब्ध होता है वहीं कई कृषि उत्पाद आधारित महत्वपूर्ण उद्योगों जैसे चीनी, वस्त्र, जूट इत्यादि के लिये कच्चे माल उपलब्ध होते हैं। कृषि व्यवस्था विकसित होने के कारण ही यह औद्योगिक उत्पादन के लिए बाजार उपलब्ध कराती है। इसलिये ग्रामीण आर्थिक विकास के प्रमुख क्षेत्रों में कृषि के विकास का प्रमुख स्थान है। जहाँ तक उद्योग का सवाल है तो आधुनिक युग उद्योग का युग है। ग्रामीण आर्थिक विकास के प्रमुख क्षेत्रों में उद्योग का प्रमुख स्थान है। कोई भी राष्ट्र तब तक विकसित देश की श्रेणी में नहीं आता है जब तक की वहाँ उद्योग विकसित न हो। आवश्यकता इस बात की है कि सतत् विकास सफलीभूत बनाने के लिए ठोस कार्य नीतियों का सम्पादन किया जाए एवं पूर्व में लिये गये नीतिगत निर्णय को निष्पादन के आधार पर जारी रखा जाए एवं जिन नीतियों का आउटपुट संतोषजनक नहीं है, उन्हें समाप्त किया जाए। इस क्षेत्र में नीति आयोग एक बेहतर विकल्प के रूप में उभर रहा है। बशर्ते एक ठोस कार्यनीतियों के लिए सह हमेशा तैयार रहे।

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

1. *कुमार, रमेश अरोड़ा, (सम्पादित) इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन : परसेप्शन एण्ड पर्सपेक्टिव, आलेख प्रकाशन, जयपुर, 1999, पृष्ठ–101–103.*
2. *शाही, राजकिशोर, ''पंचायती राज से ही विकास संभव'' हेमंत (सम्पादित) बिहार विमर्श, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2003, पृ0–173–175.*
3. *एंजिल्स, फ्रेडरिक, ''द ऑरिजिन ऑफ द फेमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एण्ड द स्टेट, फॉरेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाऊस, मास्को, 1943, पृ0–13–14.*
4. *अवस्थी,ए0पी0, विकास प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2000, पृ0– 2–4.*

5. स्वेर्डलो, आई, डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, सिराक्रूज यूनिवर्सिटी, सिराक्रूज, 1963, पृ0–179.
6. जे0सी0 जौहरी, इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, विशाल पब्लिकेशन, जालंधर, 2001, पृ0 514–16.
7. आर0 वैंकट रवि एण्ड पी0 सुन्दर राज, ''डिसेन्ट्रलाइजेशन एण्ड डेवलपमेंट इन इंडिया', मैन एण्ड डेवलपमेंट, वॉल्यूम XXVII, नं0–4, चंडीगढ़, सीआरआरआईडी, 2006, पृ0 49–50.
8. जी0 पलानीथुराई (सम्पादित) इम्पॉवरिंग पीपल–इसूज एण्ड सॉल्यूशन, कनिष्क, न्यू दिल्ली, 1996, पृ0 128.
9. रमेश चंद, द स्टेट ऑफ इंडियन एग्रीकल्चर एण्ड प्रॉसपेक्ट्स फॉर द फ्यूचर'', कंचन चोपरा एण्ड सी0एच0 हनुमंथा राव (एडिटेड) ग्रोथ, इक्यूटी, इनवायरनमेंट एण्ड पॉपुलेशन, सेज पब्लिकेशंस, न्यू दिल्ली, 2008, पृ0 116–117.
10. रुद्रदत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम, इंडियन इकोनॉमी, एस. चन्द, दिल्ली, पृ0 300.
11. उपरोक्त, पृ0 349.